संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल

ISSN 0975-735X

शोध दिशा

56

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 56/3 अक्टूबर-दिसंबर 2021 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ० मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ० शंकर क्षेम
प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ० अशोककुमार
डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : छह हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

साठोत्तरी हिंदी साहित्य : महिला कहानीकार/ **डॉ॰ शिल्पा दादाराव जीवरग** 15

साठोत्तरी हिंदी कविता में सामाजिक चेतना के विविध आयाम/ **प्रा॰ डॉ॰ संदीप जोतिराम किर्दत** 20

साठोत्तरी कविता में वैचारिकता/ **डॉ॰ भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे** 27

समकालीन हिंदी कविता : विविध आयाम/ **डॉ॰ सरोज पाटील** 32

वर्तमान काव्य में युग चेतना/ **प्रा॰ डॉ॰ शिवाजी उत्तम चवरे, डी॰ लिट्** 39

साठोत्तरी हिंदी साहित्य का सशक्त प्रवाह : हिंदी दलित कविता/ **डॉ॰ तांबोळी एस॰बी॰** 45

साठोत्तरी हिंदी कविता में जनवादी चेतना/ **प्रा॰ नवनाथ जगताप** 53

हिंदी सिनेमा में लोकसंस्कृति/ **डॉ॰ विनीता रानी** 57

मणि मधुकर के नाटकों में लोकगीत प्रणाली प्रयोग/ **प्रा॰ रुकसाना अल्ताफ पठाण** 63

साठोत्तरी उपन्यासों में पारिवारिक जीवनमूल्यों के नए प्रतिमान/ **कु॰ मेघा संभाजी तोडकर** 68

'मैं पायल' उपन्यास में किन्नर जीवन की त्रासदी और समाज की मूल्यहीनता/ **प्रवीण चौगुले** 74

साठोत्तरी काव्य में प्रगतिशील चेतना/ **डॉ॰ सविता शिवलिंग मेनकुदळे** 79

साठोत्तरी हिंदी कहानियों में नारी/ **डॉ॰ वर्षा गायकवाड** 86

जयश्री रॉय की कहानियों में चित्रित नारी/ **डॉ॰ संजय पिराजी चिंदगे** 89

साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में नारी-विमर्श/ **डॉ॰ भारत श्रीमंत खिलारे** 93

साठोत्तरी कहानी के विविध आयाम/ **डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद** 100

साठोत्तरी हिंदी गजलों में सामाजिकता/ **डॉ॰ विनोद प्रभाकर चन्नाळे** 106

अज्ञेय के काव्य साहित्य का शिल्प विधान/ **प्रा॰ कैलास बबन माने** 111

साठोत्तरी हिंदी दलित आत्मकथा के विविध आयाम/ **डॉ॰ गोरखनाथ किसन किर्दत** 118

'अपना गाँव' : हाशिए के समाज की चेतना/ **डॉ॰ बालाजी वामनराव गायकवाड** 122

रामधारीसिंह दिनकर और श्यामनारायण पांडेय के काव्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण/ **प्रा॰ वाघमारे के॰ एच॰** 129

वीरेंद्र जैन के 'डूब' उपन्यास में व्यक्त सामाजिक समस्याएँ/ **डॉ॰ उत्तम लक्ष्मण थोरात** 137

साठोत्तरी हिंदी कविता में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रासंगिकता (नारी के विशेष संदर्भ में)/ **डॉ॰ आर॰पी॰ भोसले** 141

अलका सरावगी के 'शेष कादंबरी' उपन्यास में चित्रित नारी विमर्श/ **जयश्री पांडुरंग चव्हाण, डॉ॰ शहनाज महेमुदशा सय्यद** 145

Attitude towards English language in the students preparing for MPSC exams in Kolhapur/ **Shriram Abhishek Dadasaheb** 150

Reflection of Gender in Popular Culture and Literature: A Feminist Perspective/ **Dr. Amogh A.M.** 155

वर्तमान काव्य में युग-चेतना

प्रा॰ डॉ॰ शिवाजी उत्तम चवरे, डी॰ लिट्
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
प्रा॰ संभाजीराव कदम महाविदयालय, देऊर
सातारा 415524 (महाराष्ट्र)

भारतीय संस्कृति की सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है। संयुक्त परिवार के समानांतर मूल्य विघटन को महसूस किया जा सकता है। मूल्य संक्रमण एवं मूल्य विघटन महानगरीय जीवन के हर पहलू में देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गए हैं। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी है जिससे परिवारों में संघर्ष बढ़ता जा रहा है। ऐसी संघर्षमय स्थिति में माता-पिता को समझौता करना पड़ रहा है या उन्हें परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री-पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग-दौड़ करता है। अर्थ महानगरीय मानव की कमजोरी है। अर्थ के लालच में लोग घिनौने से घिनौने कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अर्थ को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है तो पदोन्नति के लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालीन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है जो आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के प्रति हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण का कारण हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आती है।

विषय की प्रासंगिकता

हमारे भारत देश कों गाँवों का देश कहा जाता है फिर भी नगरीकरण और औद्योगिकरण की तीव्र गति के कारण देश में कस्बे, नगर और नगर, महानगर बनते जा रहे हैं। ऐसे कस्बाई जिंदगी जीने वाला व्यक्ति महानगर में आकर अपने-आपको नगरीय संस्कृति में 'एडजस्ट' नहीं कर पाता। महानगर का जीवन उस गाँव के अपनेपन तथा स्नेहशक्ति जीवन का अनुभव न होकर उदासी और शुष्कता का जीवन लगता है। भारत में ग्रामीण जनता की गरीबी, अभाव, निर्धनता, बेकारी ने उन्हें अपनी भूमि से उखड़ने के लिए विवश किया और उसे यहाँ नगरों की ओर जाने के लिए बाध्य किया। परंतु गाँव से आए व्यक्ति के लिए महानगर में समायोजन का प्रयास काफी कष्टदायक तथा तनावपूर्ण अनुभव बन जाता है। शहरों में रहनेवाले लोगों के सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव-मूल्य खत्म हो रहे हैं उसका वर्णन समकालीन कविता में किया गया है। उसी की ओर ध्यान खींचने का प्रयास इस शोध कार्य द्वारा किया गया है।

समकालीन कवि उदय प्रकाश, अरुण, कमल, कुमार कृष्ण, राजेश जोशी, कुमार अंबुज, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल, बोधिसत्व, विश्वनाथप्रसाद तिवारी, अशोक वाजपेयी, निर्मला पुतुन, किरण अग्रवाल, प्रज्ञा मजूमवार तथा दुष्यंत कुमारजी की कविताओं में युग चेतना का वर्णन समाज

की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है।

समकालीन काव्य विद्वानों ने 1960 के उपरांत माना है लेकिन मैंने तत्कालीन कवियों की समकालीन कविताओं के भीतर की वास्तविकता को पहचानने की कोशिश की है। आज के कवियों ने अपने समय को अत्यंत निकटता से, बारीकी से देखा है और उसे अनुभूत कर उसे वाणी देने का सफल प्रयास किया है। जो हमें आज की अराजक और दिशाहीन स्थिति से अवगत कराती है जिससे मनुष्य प्रभावित हो रहा है। इस कविता के माध्यम से आधुनिक समाज को चेतना देने का प्रयास कवियों ने किया है। उसे ढूँढकर पाठकों के सामने लाना इस शोध निबंध का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

मानवमूल्य

आज हमारे सांस्कृतिक तथा बुनिवादी मानव मूल्य खत्म हो रहे हैं जिससे कारण घर संस्कृति बह गई है। घर ईंट-पत्थर से नहीं बनता बल्कि मानव मूल्यों से बनता है। आज इंसान इंसान से दूर होता जा रहा है। आधुनिक संचार और स्पर्धा के इस युग में मूल्यवान वस्तुएँ हमसे छूटती जा रही हैं। संचार के इस युग में भावनाओं का संचार नष्ट हो रहा है। सांस्कृतिक तथा बुनियादी मानव मूल्यों के ह्रास के कारण आज अहंकार तथा अकेलापन बढ़ रहा है, मानवीय संवेदना तथा संयुक्त परिवार खत्म हो रहे हैं। इसलिए कवि अरुण कमल जी कहते हैं–

दुनिया में इतना दु:ख है इतना ज्वर
सुख के लिए चाहिए बस दो रोटी और एक घर
और वही दिन-ब-दिन मुश्किल पड़ रहा है।[1]

कवि के अनुसार आज हम जहाँ पहँच गए हैं, वहाँ से हमें लौटना पड़ेगा अन्यथा जीवन में दु:ख और उदासी के सिवाय कुछ नहीं रह जाएगा। इसी कारण शायद आज कवि उस घर की तलाश के लिए बाध्य हो गया जिसमें मूल्यों की खोज करनी न पड़े। आज धन की लालसा बढ़ रही है उसके लिए रिश्तों को भी तोड़ा जा रहा है। धन का अहंकार इतना बढ़ गया है कि आदमी हवा में सैर करने लगा है। उसके पाँव धरती से छूटते नजर आ रहे हैं। सहानुभूति, प्यार, दया, शांति ये चीजें खत्म होती जा रही हैं जिसके कारण अकेलापन महसूस होने लगा है। अस्तित्व की इस लड़ाई में स्त्री-पुरुष के रिश्ते, आपसी प्रेम-संबध बिगड़ते हुए नजर आ रहे हैं। प्यार के नष्ट होने के कारण और अहंकार के बढ़ने का नया नतीजा होता है उसे उदय प्रकाशजी कहते हैं–

मैं तुम्हारे बिना रह सकता था
पृथ्वी पर अपनी उम्र भर
यह मुझे सिद्ध करना था चुपचाप
यह मैंने सिद्ध किया
तुम भी रह सकती थी
अपनी उम्र भर इसी पृथ्वी पर मेरे बगैर
तुमने भी सिद्ध किया।[2]

इस तरह समाज में मूल्यों का ह्रास होने के कारण आज आपसी संबधों का ताना-बाना भी टूटता नजर आ रहा है। तालमेल खत्म हो रहा है जिससे समाज में असंतुलन की स्थिति पैदा हो गई है। यांत्रिक युग में लोग यंत्र की तरह दिन रात काम में इतने व्यस्त हो गए हैं कि उन्हें एक-दूसरे से दो शब्द कहने की फुर्सत नहीं है। यही कारण है आज अजनबीपन बढ़ने लगा है। कवि आज के

ISSN 0975-735X

मनुष्यों का ध्यान बार-बार मूल्यों की तरफ खींचने का प्रयास कर रहे हैं।

रिश्तों के विघटन के कारण अकेलापन आना स्वाभाविक ही है। संबंधों के विघटन से उपजे अकेलेपन को कवि ने बखूबी प्रस्तुत किया है। आज व्यक्ति इतना व्यस्त है कि गली-मोहल्ले में भी एक-दूसरे को नहीं पहचानता। समय की हवा ही ऐसी है यही कहा जा सकता है। रिश्तों के विघटन को इन पक्तियों में देखा जा सकता है–

माँ धीरे-धीरे चली गई है इतनी दूर
तक उसके सबसे स्मरणीय और चमकदार रूप के लिए
लौटना होता है कई साल पहले के वक्त में
मैं चाहूँ तो भी नहीं रोक सकता माँ को जाने से
दूर दूर तक नहीं बची रह गई है मुझमें अबोधन
धीरे-धीरे मैं खुद चला आया हूँ माँ से इतनी दूर
कि मेरे घर में आज माँ एक अतिथि है।[3]

कुमार कृष्णजी की अनेक कविताओं में बचपन में बिताए हुए स्नेह के मधुर अवसर की पहचान मिलती है। वह दिन याद करके वह भावविभोर होते हुए कहते हैं–

बहुत छोटा था/ जानता था मैं
दादा के कंबल में है कोई जादू
कहझट से झूला देता है बच्चों को
बहुत बार मैंने/ सोती हुई बहन को
उसी कंबल में सोता देखा था।[4]

मतलब है कि आत्मीयता मुनष्य को अपनापन देती है। वह स्मृतियों के आधार पर भी जी सकता है। मगर आज अकेलापन इसलिए महसूस हो रहा है क्योंकि कहीं सारी चीजें छूटती नजर आ रही हैं। जिंदगी में हमारे आसपास सुविधाओं का ढेर लगा हुआ है, मगर प्रेम, सहानुभूति, आत्मीयता जैसी चीजें बिखरती हुई नजर आ रही हैं। यह व्यथित करनेवाला चिंतन है। आज वह अकेले भटकने को मजबूर हो गया है। वह सिर्फ अपने लोगों का प्यार चाहता है मगर उसे कुछ नहीं मिल रहा है। समकालीन कवियों की कविता में चेतावनी दी गई है कि आज जीवन में प्यार की प्रमुख भूमिका है। इसमें वह ताकत मौजूद है जो व्यक्ति को व्यक्ति, परिवार और समाज से जोड़ती है। प्यार की इस जीवनदायिनी शक्ति को समझने की जरूरत है। प्रेम के अभाव के कारण मनुष्य मनुष्य से दूर होकर अकेलापन महसूस कर रहा है।

हिंदी गजल में वास्तविकता का चित्रण

आज भारत की सामाजिक हालत बिगड़ी हुई नजर आती है। देश में बेकारी, गरीबी, महँगाई, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी, धर्म के नाम पर दंगे, पूँजीवाद व्याप्त है। सर्वहारा वर्ग का शोषण हो रहा है। आज की सामाजिक व्यथा का कारण समाज ही है। वर्तमान समाज व्यवस्था के मापदंड कुछ बदले हुए नजर आते हैं वे पतन की ओर जा रहे हैं। समाज फिर भी विवश है। वह इन आपत्तियों का सामना करना नहीं चाहता बल्कि जैसा है वैसे ही जीवन जीना चाहता है। इसी को दृष्टि में रखकर दुष्यंतजी ने सहनशीलता की परिसीमा को दिखाते हुए कहा है–

न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढक लेंगे
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।[5]

ISSN 0975-735X

आज सामाजिक व्यवस्था ही भ्रष्ट होती जा रही है। सड़कों पर भ्रष्टाचार का कीचड़ फैला हुआ है और हम सभी उसमें सने हुए हैं। भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट करते हुए दुष्यंत जी कहते हैं–

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछा है
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।[6]

व्यक्ति के अजनबीपन पर व्यंग करते हुए दुष्यंतजी ने लिखा है–

इस शहर में जो कोई बारात हो या वारदात
हर किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।[7]

आज नगरों में संबंध बड़ी मात्रा में बिगड़ रहे हैं। यहाँ एक पशु के रूप में गरजवंत काम करता रहता है। वहीं इंसान घर में अपने आपको इस तरह कैद करता है कि उसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं। उसे कोई सरोकार ही नहीं रहता। परिवर्तन संसार का नियम है। समाज में बहुत सी बातें हैं जो पुरानी पड़ चुकी हैं। हमें पुरानी बातों को हटाना चाहिए और नई-नई बातों का स्वागत करना चाहिए। इसी बदलाव से हमारी उन्नति हो सकती है। इसी वास्तविकता को दुष्यंत जी ने अपनी गजल के माध्यम से व्यक्त किया है–

पुराने पड़ गए डर, फेंक दो तुम भी
ये कचरा आज बाहर फेंक दो तुम भी
लपट आने लगी है अब हवाओं में भी
ओसारे और छप्पर फेंक दो तुम भी
यहाँ मासूम सपने जी नहीं पाते
इन्हें कुंकुम लगाकर फेंक दो तुम भी।[8]

शोषित स्त्री का चित्रण

स्मकालीन हिंदी कविता में स्त्री विमर्श संबधी कविताओं को पढने पर ज्ञात होता है कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो रहा है और वहाँ अत्याचार अन्याय को चुपचाप कैसे सह रहा है। जुल्म के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत उसमें नहीं दिखाई देती जिसकी वजह से शोषण तंत्र मजबूत होता जा रहा है। समकालीन कवि ने स्त्री पर होते रहे दमन को अपनी आँखों से देखते हुए स्पष्ट किया है कि अभी वह बद से बदतर जिंदगी जी रही है और निरंतर उपेक्षा की शिकार हो रही है। उसकी दयनीय स्थिति देखिए कि पहले वह लोगों के घरों में जूठे बर्तन माँजती थी लेकिन इससे गुजारा न होने पर वह अब ठेकेदार के पास काम करती है–

वह तोड़ती है पत्थर
ढोती है सीमेंट की बोरियाँ
फर्श बनाती है
ढलाई करती है छत की
और वह सब कुछ
जो ठेकेदार कहता है।[9]

अंतिम दो पंक्तियों से जाहिर है कि वह मजबूरी में यह सब-कुछ करने को तैयार होती है। उनके बच्चे आवारा कुत्तों की तरह गलियों से घूमते हैं और बच्चियों की तो दशा दर्दभरी है। कवि कहते हैं–

ISSN 0975-735X

मुट्ठी-भर भुने चने या मूँगफली देकर
कोई भी उसकी बच्चियों को फुसला ले जाता है
वे नहीं जानती 'बलात्कार' शब्द
वे सुबक-सुबककर रोती हैं बस
और अपनी नन्ही नन्ही मैली हथेलियों से
अपने धूल से सने आँसू पोछती जाती हैं।[10]

स्त्री आज अपने घर में भी सुरक्षित दिखाई नहीं देती है। भाई बहन का पवित्र रिश्ता भी आज सिफ़्र नाम का रह गया है। आज की स्त्री उपेक्षित, लाचार और शोषित दिखाई देती है। महानगर में कामकाजी लड़की किस तरह से तनाव और दानवों के बीच जी रही है इसे ज्ञानेंद्रपति ने अपनी कविता पुस्तक 'भितसार' में बखूबी प्रस्तुत किया है। ऑफिस में काम करनेवाली मिस बनर्जी नकली हँसी हँसते थक गई है। जीवन के जंगल में वास्तविक हँसी वह भूल गई है। बस, ट्रेन में सफर करते समय वह इज्जत लुटने के डर से भयभीत रहती है। इस डर के कारण वह रात को अच्छी तरह सो भी नहीं सकती। उसके परिवार के सदस्य इसके बारे में कुछ नहीं जानते।

विश्वनाथप्रसाद निवारी की कविता 'शब्द और शताब्दी की ही कविताएँ' हैं। उनकी 'तीर्थयात्रा' और 'वह लड़की' में भी नारी जीवन की कटु वास्तविकता देखने को मिलती है। स्त्री के प्रति समाज का नजरिया सदैव उत्पीड़नकारी रहा है। कवि ने एक स्त्री की दुनिया को बखूबी पहचानते हुए उसके सुबह बिस्तर से उठने से लेकर शाम को बिस्तर पर जाने तक की क्रियाओं का वर्णन किया है। वह घर के काम से लेकर बाहर सबके लिए सेविका के रूप में हाजिर है परंतु उसके लिए कोई सहानुभूति तक व्यक्त नहीं कर रहा है। उसके लिए किसी के पास कोई वक्त नहीं है। वह अपने को हर स्थिती में एडजस्ट कर लेती है। कम सामान में गुजारा कर लेती है। कवि ने कहा है–

दोपहर भोजन के आखिर दौर में
आ गए मेहमान
दाल में पानी मिलाकर
किया उसने अतिथि सत्कार
और खुद बैठी चटनी के साथ
बची हुई रोटी लेकर।[11]

स्त्री का जीवन घर के सभी सदस्यों के लिए समर्पित है लेकिन उसके लिए किसी के पास प्रेम से भरे दो शब्द भी नहीं हैं। वह कोल्हू के बैल की तरह काम में लगी रहती है। आज दुनिया में बड़े-बड़े बदलाव आ चुके हैं पर स्त्री की स्थिति में आया बदलाव आटे में नमक के समान है। वह परंपरागत साँचे में ढली हुई चुपचाप अन्याय को सह रही है लेकिन कवि कहते हैं कि स्त्री चुप है इसका मतलब वह गूँगी नहीं है। यह सही है कि तुम्हारे खिलाफ अकेले लड़ने में अनेक खतरे मौजूद हैं परंतु मैं उनसे नहीं घबराती। वह निडरता के साथ बुलंद आवाज में पुरुष को ललकार कर कहती है–

तुम्हारी मानसिकता की पेचीदी गलियों से गुजरती
मैं तलाश रही हूँ तुम्हारी कमजोर नसे
ताकि ठीक समय पर

ठीक तरह से कर सकूँ हमला
और बता सकूँ सरेआम गिरेबान पकड़
कि मैं वो नहीं हूँ जो तुम समझते हो।[12]

ऐसा होने पर सच में उसकी अपने वजूद की तलाश पूरी हो जाएगी और उसे इस तरह भटकना नहीं पड़ेगा।

निष्कर्ष

संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं। बाप बेटे के बीच वैचारिक असमानता ने दोनों पीढ़ियों के बीच गहरी खाई पैदा कर दी है जिससे परिवार में संघर्ष बढ़ता जा रहा है ऐसी संघर्षमय स्थिति में माता-पिता को समझौता करना पड़ रहा है या उन्हें परिवार छोड़कर वृद्धाश्रम में शरण लेनी पड़ रही है। महानगरीय स्त्री-पुरुष के लिए विवाह संस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। महानगरीय मानव अधिक सुख के लिए पूरा दिन भाग-दौड़ करता है। अर्थ महानगरीय मानव की कमजोरी है। अर्थ के लालच में लोग घिनौने से घिनौने कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अर्थ को पाने के लिए नारी अपना तन बेचती है तो पदोन्नति के लिए घर की नारी को दूसरों के सामने परोसा जाता है। समकालीन कविता में उन मूल्यों की तलाश की जा रही है जो आज नष्ट होते जा रहे हैं। बाजारवाद के गंभीर दुष्परिणाम के प्रति हमें सचेत होना पड़ेगा। पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के कारण हमारी सोच बिगड़ती हुई नजर आ रही है। भारतीय संस्कृति को सभ्यता को पहचानकर उसे फिर से अपनाने की जरूरत महसूस की जा रही है।

संदर्भ

1. पुतली में संसार, अरुण कमल, पृ॰ 58
2. रात में हारमोनियम, उदय प्रकाश, पृ॰ 124
3. अंनतिम, कुमार अंबुज, पृ॰ 69
4. साये में धूप, दुष्यंतकुमार त्यागी, पृ॰ 1
5. यह भी उर्मिला है, किरण अग्रवाल, पृ॰ 154
6. शब्द और शताब्दी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ॰ 21
7. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ॰ 30

मो॰ 9975381651

ISSN 0975-736X